IR
Integral Research

Integral Research (Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal) ISSN: 3048-5991
Journal home page: https://integralresearch.in/, Vol. 02, No. 01, January. 2025

आरण्यकों में शिक्षा और संस्कृति का स्वरूप

डॉ. बैकुण्ठ नाथ शुक्ल *
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
डॉ. विक्रान्त उपाध्याय
एसोसिएट प्रोफेसर
बी. एड. विभाग
ने.मे.शि.ना.दास (पी.जी.) कॉलेज
बदायूँ

Abstract

आरण्यक वैदिक साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, जो ब्राह्मण ग्रन्थों के अंतिम भाग के रूप में स्थित हैं तथा उपनिषदों के पूर्वरूप माने जाते हैं। इनका नामकरण 'अरण्य' (वन) से सम्बद्ध है, क्योंकि इनका अध्ययन वानप्रस्थ आश्रम में वनवासी ऋषियों द्वारा किया जाता था। इन ग्रन्थों में यज्ञों के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पक्षों का विवेचन है, जिसमें प्राणविद्या, आत्मतत्त्व, कालचक्र, ब्रह्मविद्या तथा रहस्यात्मक उपासना पद्धतियों का गहन विश्लेषण मिलता है। आरण्यकों की भाषा वैदिक एवं लौकिक संस्कृत के मध्यवर्ती रूप में है, जो ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के बीच की कड़ी है। इनमें ऐतरेय, शांखायन, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय तथा जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण (तलवकार आरण्यक) जैसे प्रमुख ग्रन्थ सम्मिलित हैं। ये ग्रन्थ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे—तैत्तिरीय आरण्यक में कुरु, पंचाल, काशी आदि जनपदों का उल्लेख मिलता है। आरण्यकों का मुख्य उद्देश्य यज्ञ के बाह्य अनुष्ठानों के स्थान पर उनके आन्तरिक एवं प्रतीकात्मक अर्थों को प्रतिपादित करना है। इनमें प्राण की महिमा, ऋषियों की प्राणोपासना, काल का दार्शनिक विवेचन तथा नैतिक शिक्षाएँ विशेष रूप से प्रस्तुत की गई हैं। ये ग्रन्थ उपनिषदों के तत्त्वचिन्तन की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं, जिससे भारतीय दर्शन के विकासक्रम को समझने में सहायता मिलती है। निष्कर्षतः, आरण्यक साहित्य वैदिक ज्ञान की वह धारा है जो ब्राह्मणों की कर्मकाण्डीय परम्परा को उपनिषदों के ज्ञानमार्ग से जोड़ती है। इनकी आध्यात्मिक गहनता, दार्शनिक गम्भीरता एवं ऐतिहासिक उपादेयता इन्हें भारतीय चिन्तन के इतिहास में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

Keywords: आरण्यक ग्रंथ, वैदिक साहित्य, प्राणविद्या, ब्रह्मविद्या, उपनिषद्-पूर्वारंभ

ब्राह्मण ग्रन्थ के जो भाग अरण्य में पठनीय हैं, उन्हें 'आरण्यक' कहा गया या यों कहें कि वेद का वह भाग, जिसमें यज्ञानुष्ठान-पद्धति, याज्ञिक मन्त्र, पदार्थ एवं फलादि में आध्यात्मिकता का संकेत दिया गया, वे 'आरण्यक' हैं। जो मनुष्य को आध्यात्मिक बोध की ओर झुका कर सांसारिक बंधनों से ऊपर उठते हैं। वानप्रस्थाश्रम में संसार-त्याग के उपरांत अरण्य में अध्ययन होने के कारण भी इन्हें 'आरण्यक' कहा गया। आरयण्कों में दार्शनिक एवं रहस्यात्मक विषयों यथा, आत्मा, मृत्यु, जीवन आदि का वर्णन होता है। इन ग्रंथों को आरयण्क इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन ग्रंथों का मनन अरण्य अर्थात् वन में किया जाता था। ये ग्रन्थ अरण्यों (जंगलों) में निवास करने वाले सन्यासियों के मार्गदर्शन के लिए लिखे गए थै। आरण्यकों में ऐतरेय आरण्यक, शांखायन्त आरण्यक, बृहदारण्यक, मैत्रायणी उपनिषद् आरण्यक तथा तवलकार आरण्यक (इसे जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं) मुख्य हैं। ऐतरेय तथा शांखायन

---

* Corresponding Author: Dr. B.N. Shukla
Email: anubaikunth.7375@gmail.com DOI: https://doi.org/10.57067/ir.v2i1.326
Received 15 Oct. 2024; Accepted 21 Dec. 2024. Available online: 30 Jan. 2025.
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

ऋग्वेद से, बृहदारण्यक शुक्ल यजुर्वेद से, मैत्रायणी उपनिषद् आरण्यक कृष्ण यजुर्वेद से तथा तवलकार आरण्यक सामवेद से सम्बद्ध हैं। अथर्ववेद का कोई आरण्यक उपलब्ध नहीं है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राण विद्या मी महिमा का प्रतिपादन विशेष रूप से मिलता है। इनमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी हैं, जैसे- तैत्तिरीय आरण्यक में कुरू, पंचाल, काशी, विदेह आदि महाजनपदों का उल्लेख है।

आरण्यक' नाम से स्पष्ट है कि इन ग्रन्थों का घनिष्ठ सम्बन्ध अरण्य अथवा वन से है। अरण्यों के एकान्त वातावरण में, गम्भीर आध्यात्मिक रहस्यों के अनुसन्धान की चेष्टा स्वाभाविक ही नहीं, सुकर भी थी। आरण्यकों में सकाम कर्म के अनुष्ठान तथा उसके फल के प्रति आसक्ति की भावना विद्यमान नहीं दिखलाई देती। इसी कारण इनका आध्यात्मिक महत्त्व ब्राह्मण ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक है। उपनिषदों के तत्त्वज्ञान को समझने के लिए भी आरण्यकों का पहले अनुशीलन आवश्यक है। उपनिषदों में बहुसंख्यक ऐसे प्रसंग हैं, जिनके यथार्थ परिज्ञान के लिए उनके उन मूलाधारों को जानना आवश्यक है, जो आरण्यकों में निहित हैं। भाषा की दृष्टि से भी आरण्यक साहित्य महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इनका प्रणयन वैदिकी और लौकिक संस्कृत की मध्यवर्तनी भाषा में हुआ है। कर्मकाण्ड की दृष्टि से ब्राह्मण एवं आरण्यक परस्पर अत्यधिक सम्बद्ध हैं, इसलिए बौधायन धर्मसूत्र में, आरण्यकों को भी 'ब्राह्मण' आख्या से संयुक्त किया गया है–

"विज्ञायते कर्मादिष्वेतैर्जुहुयात् पूतो देवलोकात् समश्नुते इति हि ब्राह्मणमिति हि ब्राह्मण्"।[1]

तैत्तिरीयारण्यक–भाष्यभूमिका में सायणाचार्य का कथन है कि अरण्यों अर्थात् वनों में पढ़े–पढ़ाये जाने के कारण 'आरण्यक' नामकरण सम्पन्न हुआ—'अरण्याध्ययना–देतदारण्यकमितीर्यते। अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।।[2] ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने वाला ही इन ग्रन्थों के अध्ययन का अधिकारी है–"एतदारण्यकं सर्व नाव्रती श्रोतुमर्हति"।[3] व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'आरण्यक' शब्द 'अरण्य' में 'वुञ्' (भावार्थक) प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है–इस प्रकार से इसका अर्थ है, 'अरण्य में होने वाला' - 'अरण्ये भवमिति आरण्यम्।' बृहदारण्यक में भी इसी का समर्थन किया गया है–'अरण्येऽनूच्यमानत्वात् आरण्यकम्।' उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि आरण्यकों का अध्ययन सामान्यतः वनों में ही किया जाता था, किन्तु यह अनिवार्यता नहीं थी। तैत्तियारण्यक के कुछ अंशों से विदित होता है कि वैदिकयुग में, वनों के साथ ही ग्रामों में भी कोई बन्धन नहीं था।[4] यही नहीं, चलते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए तथा निद्रोन्मुख स्थितियों में भी कोई यदि इनका अध्ययन कर लेता था, तो वह सभी लोकों की उपलब्धि का भाजन हो जाता था।[5] इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भ में, आरण्यकों का अनुशीलन सर्वत्र किया जाता था, किन्तु कालान्तर में इन्हें वनों में ही पढ़े जाने को अधिक श्रेयस्कर माना जाने लगा।

पाश्चात्य विद्वानों का मन ब्राह्मण ग्रन्थों में यद्यपि कम रमा है, किन्तु उन्होंने भी आरण्यकों की प्रशंसा उन्मुक्त हृदय से की है। ओल्डेनबर्ग और मैक्डॉनेल जैसे मनीषी इन पवित्र ग्रन्थों की गरिमा से पूर्णतया आश्वस्त प्रतीत होते हैं।[6] महाभारत में कहा गया है कि जैसे दधि से नवनीत, मलयगिरि से चन्दन और औषधियों से अमृत प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार वेदों से आरण्यक ले लिया जाता है।[7] आरण्यकों में यज्ञ के गूढ़ रहस्यों और दार्शनिक तत्वों का विवेचन निहित है। वे ज्ञान और चिंतन को महत्व देते हैं, और उनकी मुख्य शिक्षा आध्यात्मिक और दार्शनिक है।आरण्यक ग्रन्थ वस्तुतः ब्राह्मणों के परिशिष्ट भाग हैं और उपनिषदों के पूर्वरूप। उपनिषदों में

जिन आत्मविद्या, सृष्टि और तत्त्वज्ञान विषयक गम्भीर दार्शनिक विषयों का प्रतिपादन है, उसका प्रारम्भ आरण्यकों में ही दिखलायी देती है। आरण्यकों में वैदिक यागों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन है। इनमें प्राणविद्या का विशेष वर्णन हुआ है। कालचक्र का विशद वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक में प्राप्त होता है। यज्ञोपवीत का वर्णन भी इस आरण्यक में सर्वप्रथम मिलता है।वैदिक तत्त्वमीमांसा के इतिहास में आरण्यकों का विशेष महत्त्व स्वीकार किया जाता है। इनमें यज्ञ के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। इनमें मुख्य रूप से आत्मविद्या और रहस्यात्मक वि के विवरण हैं। वन में रहकर स्वाध्याय और धार्मिक कार्यों में लगे रहने वाले वानप्रस्थ-आश्रमवासियों के लिए इन ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन किया गया है। प्राणविद्या के अतिरिक्त प्रतीकोपासना, ब्रह्मविद्या, आध्यात्मिकता का वर्णन करने से आरण्यकों की विशेष महत्ता है। अनेक ऐत और सांस्कृतिक तथ्यों की प्रस्तुति के कारण भी आरण्यक ग्रन्थ उपोदय हैं। वस्तुतः ये ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी जैसे हैं, क्योंकि इनसे उपनिषदों के प्रतिपाद्य विषय और भाषा शैली के विकास का अध्ययन करने में सहायता मिलती है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार, आरण्यक यज्ञ के गूढ़ रहस्य का प्रतिपादन करते हैं। 'रहस्य' शब्द से अभिहित की जाने वाली ब्रह्मविद्या की भी इसमें सत्ता है। आरण्यकों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्राणविद्या तथा प्रतीकापासना है। वे प्राणविद्या को अपनी अनोखी सूझ नहीं बतलाते, प्रत्युत ऋग्वेद के मन्त्रों[11] को अपनी पुष्टि में उदधृत करते हैं, जिनमें प्राणविद्या की दीर्घकालीन परम्परा का इतिहास मिलता है।[12] उपनिषदों के समान आरण्यक–ग्रन्थ भी एक ही मूलसत्ता को मानते हैं, जिसका विकास इस सृष्टि के रूप में हुआ है। विभिन्न वस्तुओं में एक ही तत्त्व कैसे अनुस्यूत है, इसका निरूपण ऐतरेयारण्यक में इस प्रकार से हुआ है—

"एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्त एतमग्नावध्वर्यव एतं महाव्रते छन्दोगा एतमस्यामेतं दिव्येतं वायावेतमाकाश एतमप्स्वेतमोषधीष्वेतं वनस्पतिष्वेतं चन्द्रमस्येतं नक्षत्रेष्वेतं सर्वेषु भूतेष्वेतमेव ब्रह्म इत्याचक्षते।"

तैत्तिरीय–आरण्यक में काल का निदर्शन बहुत सुन्दरता से किया गया है। काल निरन्तर प्रवाहमान है। अखण्ड संवत्सर के रूप में हम इसी पारमार्थिक काल के दर्शन करते हैं। व्यावहारिक काल अनेक तथा अनित्य है। व्यवहार की दृष्टि से उसके अनेक भाग मुहूर्त्त, दिन, रात, पक्ष, मास इत्यादि रूपों में किए जाने पर भी वस्तुतः वह एकरूप अथवा एकाकार ही रहता है। इस सन्दर्भ में नदी का दृष्टान्त दिया गया है, जो अक्षय्य स्रोत से प्रवाहित होती है, जिसे नाना सहायक नदियाँ आकर पुष्ट बनाती हैं, तथा जो विस्तीर्ण होकर भी नहीं सूखती हैं। यही स्थिति काल के सन्दर्भ में संवत्सर की है–

नदीव प्रभवात् काचिदक्षय्यात् स्यन्दते यथा।
तां नद्योऽभिसमायान्ति सोरुः सती न निवर्तते।।
एवं नाना समुत्थानाः कालाः संवत्सरं श्रिताः।[13]

प्राणविद्या के महत्त्व का निरूपण आरण्यकों में विशेष रूप से है। ऐतेरेय–आरण्यक का यह विशिष्ट प्रतिपाद्य है। तदनुसार प्राण इस विश्व का धारक है, प्राण की शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, उसी प्रकार सर्वोच्च प्राणी से लेकर चींटी तक समस्त प्राणी इसी प्राण के द्वारा प्रतिष्ठित हैं–

'सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टबधः, तद्यथायमाकाशः प्राणेन बृहत्या
विष्टब्ध एवं सर्वाणि भूतान्यापिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्'[14]

प्राण ही आयु का कारण है, कौषीतकि–उपनिषद् से भी इसकी पुष्टि होती है–'यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः।' इसीलिस जैसे पुत्र अपने सत्कर्मों से पिता की सेवा करता है, उसी प्रकार अन्तरिक्ष और वायु भी प्राण की सेवा में संलग्न रहते हैं–

'प्राणेन स्रष्टावन्तरिक्षं च वायुश्च।
अन्तरिक्षं वा अनुचरन्ति अन्तरिक्षमनुश्रृण्वन्ति।
वायुरस्मै पुण्यं गन्धमावहति।
एवमेतौ प्राणंपतरं परिचरतोऽन्तरिक्षं च वायुश्'।[15]

सभी ऋचाएँ, यहाँ तक की सभी वेद और ध्वनियाँ प्राण में ही सन्निहित हैं—

'ता वा एताः सर्वा ऋचः सर्वे घोषाः एकैव व्याहतिः
प्राण एव प्राण ऋच इत्येवं विद्यात्'।[16]

प्राण के विभिन्न रूपों के ध्यान से ध्याता को विभिन्न फलों की प्राप्ति होती है। अहोरात्र के रूप में प्राण कालात्मक है। प्रातःकाल प्राण का प्रसरण दिखलाई पड़ता है। सायंकाल इन्द्रियों में जो संकोच आता है, वह प्राण के कारण ही है। हिरण्यदन नामक ऋषि ने प्राण की देवात्मक रूप में उपासना की थी। ऐतरेय आरण्यक में ही प्राणों की ऋषिरूप में भी उपासना निर्दिष्ट है। गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ प्रभृति सभी ऋषि प्राण ही हैं। 'गृत्समद' नाम में विद्यमान 'गृत्स' और 'मद' का, इस सन्दर्भ में पृथक–पृथक् निर्वचन करते हुए कहा गया है कि शयन ही के समय वाक्, चक्षु इत्यादि इन्द्रियों के निगरण करने के कारण 'गृत्स' है और रीति–क्रिया के समय वीर्यस्लखन रूप 'मद' को उत्पन्न करने के कारण 'मद' कहलाता है। इस प्रकार 'गृत्समद' का तात्पर्य है प्राण और अपान का संयोग। प्राण ही विश्वामित्र है, क्योंकि समस्त विश्व इस प्राण देवता का भोग्य होने के कारण मित्र है–'विश्वः मित्रं यस्य असौ विश्वामित्रः।' 'वामदेव' नामगत 'वाम' शब्द प्राण की वन्दनीया, भजनीयता और सेवानीयता का द्योक है। समस्त विश्व को पाप से बचाने के कारण अत्रि भी प्राण ही है–'सर्व पाप्मनोऽत्रायत इति अत्रिः।' 'भरद्वाज' के सन्दर्भ में कहा गया है कि गति सम्पन्न होने से मनुष्य देह 'वाज' है और प्राण इस शरीर में प्रवेश करके निरन्तर उसका भरण करता है। 'वसिष्ठ' भी प्राण ही है, क्योंकि इस शरीर में इन्द्रियों के निवास करने का कारण प्राण ही है। इस प्रकार, ऋषि–भावना से प्राणोपासना का निर्देश आरण्यकों में अन्त्यन्त विस्तार से उपलबध

होता है। मैत्रायणी–आरण्यक में प्राण, अग्नि और परमात्मा शब्दों को समानार्थक बतलाया गया है–'प्राणोऽग्निः परमात्मा'।[17] ऐतिहासिक सन्दर्भों में उपादेय अनेक तथ्यों का परिज्ञान भी आरण्यकों से होता है। तदनुसार यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक में है। वहाँ कहा गया है कि यज्ञोपवीत–धारण करके जो व्यक्ति यज्ञानुष्ठान करता है, उसका यज्ञ भलीभाँति स्वीकार किया जाता है–ऐसा यज्ञोपवीतधारी व्यक्ति जो कुछ भी पढ़ता है, वह यज्ञ ही है।[18] 'श्रमण' शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय आरण्यक में तपस्वी के अर्थ में हुआ है। कालान्तर से, बौद्ध काल में, यह शब्द बौद्धभिक्षुओं का ज्ञापक बन गया।[19] इसी आरण्यक में एक सहस्र धुरों वाले, बहुसंख्यक चक्रों वाले तथा सहस्र अश्वों वाले एक विलक्षण रथ का वर्णन है। काण्वशाखीय बृहदारण्यक में सन्यास का विधान स्पष्ट शब्दों में है। कहा गया है कि आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही कोई मुनि होता है। इसी ब्रह्मलोक की इच्छा से संन्यासी सन्यास धारण करते हैं।[20] अधिकांश आरण्यक ब्राह्मणग्रन्थों के अन्तिम भाग हैं, इसलिए उन ब्राह्मणों के प्रवचनकर्ता ही, कतिपय अपवादों को छोड़कर, आरण्यकों के प्रवचनकर्ता हैं। उदाहरण के लिए ऐतरेय आरण्यक परम्परा के अनुसार, ऐतरेय–ब्राह्मण का अन्तिम भाग है, इसलिए ऐतरेय–ब्राह्मण के प्रवक्ता महिदास ऐतरेय को ही ऐतरेय–आरण्यक (तृतीय आरण्यक तक) का भी प्रवचनकर्ता माना जाता है। इस प्रकार का उल्लेख भी ऐतरेय–आरण्यक में है–'एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः'।[21] यद्यपि प्रो. कीथ इस उल्लेख को ही आधार मानकर महिदास को ऐतरेयारण्यक की रचना का श्रेय नहीं देते[22], किन्तु अधिकांश विद्वान् उनसे असहमत हैं। इसलिए यह निश्चित है कि ऐतरेय आरण्यक के तृतीय आरण्यकान्त भाग के प्रवचनकर्ता महिदास ऐतरेय ही हैं। इनका विशद परिचय ऐतरेय–ब्राह्मण के अन्तर्गत दिया जा चुका है। ऐतरेय आरण्यक के अन्तर्गत चतुर्थारण्यक के प्रवचनकर्ता आश्वलायन तथा पञ्चम के शौनक माने जाते हैं। ऐतरेयारण्यक के भाष्य में सायण की भी यही धारणा है–'अतएव पञ्चमे शौनकेनोदाहताः। ताश्च पञ्चमे शौनकेन शाखान्तरमाश्रित्य पठिताः।'

शांखायन–आरण्यक के द्रष्टा का नाम गुणाख्य शाङ्खायन है। इनके गुरु का नाम था कहोल कौषीतकि, जैसा कि इस आरण्यक के 15वें अध्याय में सुस्पष्ट उल्लेख है–'नमो ब्रह्मणे नम आचार्येभ्यो गुणाख्याच्छाङ्खायनादस्माभिरधीतं गुणाख्यः शाङ्खायनः कहोलात्कौषीतकेः।' बृहदारण्यक क प्रवचनकर्ता, परम्परा से महर्षि याज्ञवल्क्य माने जाते हैं, क्योंकि वही सम्पूर्ण शतपथ–ब्राह्मण के प्रवक्ता हैं और बृहदारण्यक शतपथान्तर्गत ही है। सायणाचार्य के अनुसार तैत्तिरीय–आरण्यक के रूप में प्रख्यात कृष्णयजुर्वेदीय आरण्यक के द्रष्टाऋषि कठ हैं–इस प्रकार इसे काठक–आरण्यक के नाम से अभिहित किया जाना चाहिए—

'कठन मुनिना दृष्टं काठकं परिकीर्त्यते।
सावित्रो नाचिकेतश्च चातुर्होत्रस्तृतीयकः।।
तुर्यो वैश्वसृजस्तद्वद् वह्निरारुणकेतुकः।
स्वाध्यायब्राह्मणं चेति सर्व काठकमीरितम्।।'[23]

मैत्रायणीय–आरण्यक ही मैत्रायणीय–उपनिषद् के रूप में विख्यात है। जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण, सामवेद के अन्तर्गत् 'तलवकार–आरण्यक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अन्त में कश्यप से गुप्त लौहित्य तक ऋषि–नामों की सुदीर्घ श्रृंखला दी गई है।आरण्यकों का

देश–काल वही है, जो ब्राह्मणग्रन्थों का है। तैत्तिरीयारण्यक में गंगा–यमुना का तटवर्ती मध्यदेश अत्यन्त पवित्र तथा मुनियों का निवास बतलाया गया है।[24] इसी आरण्यक में आगे कुरुक्षेत्र तथा खाण्डवन का वर्णन है, जिससे ज्ञात होता है कि इसका सम्बन्ध कुरुपाञ्चाल जनपदों से रहा है। शांखायन आरण्यक में उशीनर, मत्स्य, कुरु–पांचाल और काशी तथा विदेह जनपदों का वर्णन है।[25] मैत्रायणीय–आरण्यक में तत्कालीन भारत के अनेक प्रतापी सम्राटों के नाम मिलते हैं– **'अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः।**

केचित् सुद्युम्न–भूरिद्युम्न–इन्द्रद्युम्न–कुवलयाश्व–यौवनाश्ववध्रयश्व–अश्वपति–शशबिन्दु–हरिश्चन्द्र–अम्बरीषनन्क्तु–शर्याति–ययाति–अनरणि–अक्षसेनादयः'।[26]

उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट है कि आरण्यकग्रन्थों का प्रदेश प्राचीन भारत का प्रायः मध्यभाग है।आरण्यकों की भाषा सामान्यतः ब्राह्मणों के सदृश ही हैं ऐतरेय–आरण्यक में, अनेक स्थलों पर ऐतरेय–ब्राह्मण के वाक्य भी ज्यों के त्यों उदधृत हैं। प्रायः यह वैदिकी और लौकिक–संस्कृत के मध्य की भाषा है। जैमिनीय शाखा के तलवकार–आरण्यक की भाषा में अन्य आरण्यकों की अपेक्षा, अधिक प्राचीन रूप सुरक्षित है। शैली में वर्णनात्मकता अधिक है। मन्त्रों के उद्धरणपूर्वक अपने प्रतिपाद्य का निरूपण करने की शैली आरण्यकग्रन्थों में प्रायः पाई जाती है। आरण्यकों के उन भागों में, जो आज उपनिषद के रूप में प्रतिष्ठित हैं, संवादमूलक संप्रश्न–शैली दिखलाई देती है।

उपर्युक्त पृष्ठों में आरण्यक साहित्य की जो विशद समीक्षा की गई, उसे निष्कर्ष रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

1. यज्ञ–संस्था के आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति की दिशा में यह साहित्य महीयसी भूमिका का निर्वाहक है।
2. उपनिषदों के तात्त्विक अनुशीलन के सन्दर्भ में आरण्यक–साहित्य पूर्व पीठिका का निर्माता है।
3. अनेक नये और ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्यों की प्रस्तुति के कारण यह साहित्य विशेष उपादेय है।
4. ब्राह्मणों और उपनिषदों के मध्य की भाषा और शैली के विकास–क्रम का इससे परिज्ञान होता है।
5. नैतिकता और आचार–दर्शन की दृष्टि से आरण्यक–साहित्य मानवीय मानस के ऊर्ध्वारोहण में परम सहायक हैं।

संदर्भ

1. बौधायन धर्मसूत्र, 3/7/16
2. श्लोक, 6
3. श्लोक, 9
4. ग्रामे मनसा स्वाध्यायमधीयीत दिवा नक्तं उतारण्येऽबल उत वाचोत तिष्ठन्नुत व्रजन्नुतासीन उत शयानोऽधीयीतैव स्वाध्यायमा–तैत्तिरीयारण्यक 2.12.2
5. य एवं विद्वान् महारात्र उषस्युदिते व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानोऽरण्ये ग्रामे वा यावत्ररसं स्वाध्यायमधीते सर्वाल्लोकां जयति सर्वाल्लोकाननृणोऽनुसञ्चरिता। –वही 2.15.1

Integral Research (Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal) ISSN: 3048-5991
Journal home page: https://integralresearch.in/, Vol. 02, No. 01, January. 2025

6. A Further development are the AranyaKas or 'forest treatises' the later age of which is indicated both by the position they occupy at the end of the Brahmanas and by their theosophical character. These works are generally represented as meant for the use of pious men who have retired to the forest and no longer perform sacrifices. According to the view of Prof. oldenberg they are, however rather treatises, which, owing to the superior to mystic sanctity of their contents, were intended to be communicated to the pupil by his teacherऽ—मैकडानल, हि. सं. लि., पृ. 172-73
7. 'नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा।
   आरण्यकं च वेदेभ्य औषधिभ्योऽमृतं यथा (331.3)।।
8. भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृष्ठ 59
9. निरुक्त–भाष्य (1.4)
10. गोपथ ब्राह्मण (2.10)
11. ऋग्वेद, 6.164.31;1.164.38
12. वैदिक साहित्य और संस्कृति, (पंचम संस्करण) पृष्ठ 234-35
13. तैत्तिरीय–आरण्यक. 1.2
14. ऐतरेय आरण्यक, 2.1.6
15. ऐतरेय आरण्यक 2.1.7
16. ऐतरेय आरण्यक 2.2.2
17. मै. आरण्यक 6.9
18. 'प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञोऽपसृतोऽनुपवीतिनो यत्किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत्' (2.1.1
19. 'वातरशना ह वा ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनो बभूवुस्तानृषयोऽर्थमायंस्ते
    निलायमचरँस्तेऽनुप्रविशुः कूष्माण्डनि ताँस्तेष्वन्वविन्दञ्छ्रद्धया च तपसा च' (2.7.1)।
20. 'ऐतमेव विदित्वा मुनिर्भवति।
    एवमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति' (4.4.22)।
21. ऐतरेय–आरण्यक, (2.1.8
22. ऐतरेय–आरण्यक (कीथ–सम्पादित तथा अनुदित) पृष्ठ 210
23. भाष्योपक्रमणिका, श्लोक 10-11
24. 'नमो गंगायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति ते मे प्रसन्नात्मानश्चिरं जीवितं वर्धयन्ति नमो गंगायमुनयोमुर्निभ्यश्च' (तैत्तिरीयारण्यक 2.20
25. 'अथ ह वै गार्ग्यो बालाकिरनूचानः संस्पृष्ट आस सोऽवसदुशीनरेषु स वसन्मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु काशिविदेहेष्विति' (6.1
26. मैत्रायणीय–आरण्यक 6.9